AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

उच्च शिक्षा में मूल्यपरक शिक्षा का ह्रास

ORIGINAL ARTICLE

Author

डॉ. विरेन्द्र कुमार चौरसिया
सह प्राध्यापक, शिक्षा विभाग
माँ विंध्यवासिनी कॉलेज ऑफ एजुकेशन
पद्मा, हजारीबाग, झारखंड, भारत

शोध सार

आज समाज में भ्रष्टाचार एवं नैतिकता का ह्रास हो रहा है इसमें नवयुवको एवं आज की शिक्षा व्यवस्था की काफी भागीदारी हैं। भारत में बनी सभी शिक्षा आयोग ने इसके रोकथाम एवं सुसंस्कृत, सभ्य एवं नैतिक समाज बनाने पर जोर दिया, परन्तु समाज भौतिक सुख पैसो के लोभ में समाज, गांव और देश को छोड़ रहें हैं। आज राष्ट्र निर्माण में शिक्षा, शिक्षक एवं छात्र का अहम् भूमिका हैं। युवा शक्ति आज अनुशासनहीन और दिग्भ्रमित हो रहे हैं। वर्तमान युग में शिक्षक इस ओर पहल कर के भारतीय समाज को बदल सकते हैं। छात्रो को नैतिकता, सभ्य एवं आदर्शवादी बनाया जा सकता है, इसके लिए महाविद्यालय एवं समाज को राजनीतिक अखाडा नहीं बनने देना होगा, छात्रों में संस्कार का पाठ गुरूजनो का सम्मान, नैतिकता, संस्कृति एवं नेतृत्व करने की क्षमता विकसीत करने का प्रयास करना होगा।

मुख्य शब्द

भ्रष्टाचार, दिग्भ्रमित, पुर्नसमायोजन, संप्रेषित, परम्परा, मूल्यपरक शिक्षा.

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के लिए मानवीय मूल्यों एवं उच्चादर्शों के ह्रास को विशेष रूप से उत्तरदायी माना जाता है। नैतिक अधोपतन का प्रश्न उठते ही शिक्षा–व्यवस्था पर उंगली उठना स्वाभाविक है क्योंकि नवयुवकों में मानवीय मूल्यों की पुर्नस्थापना हेतु शिक्षा को ही सशक्त माध्यम माना गया है।

डॉ. राधा कृष्णन आयोग, मुदालियर, आयोग, कोठारी आयोग जैसे विभिन्न आयोगों ने शिक्षा का लक्ष्य मानव को सुसंस्कृत बनाना माना है और इस बात पर विशेष जोर दिया है कि शिक्षा का लक्ष्य केवल शिक्षार्थी के मस्तिष्क में सूचनाओं का संग्रह करना नहीं है अपितु मस्तिष्क के साथ–साथ हृदय को पवित्र बनाना भी आवश्यक है। कोठारी आयोग (1964–66) ने राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका पर बल देने के साथ–साथ उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में समुचित रुचियों, अभिवृत्तियों तथा नैतिक एवं बौद्धिक मूल्यों के संवर्द्धन को सम्मिलित करने की सबल संस्तुति की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह स्वीकार किया गया है कि आवश्यक मूल्यों के ह्रास के कारण समाज में बढ़ रही कटुता व घृणा को समाप्त करने के लिए सामाजिक व नैतिक मूल्यों का पुनरुत्थान आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा को एक सक्षम साधन बनाने की दृष्टि से पाठ्यक्रम में पुर्नसमायोजन करने की आवश्यकता है। यूथ एण्ड रूरल इण्डिया पुस्तक में एक लेख युवा और ग्रामीण भारत में कहा गया है अभी जो भारत का परिदृश्य दिखता है, उसमें शिक्षालयों व महाविद्यालयों की संख्या भले ही ज्यादा हो, लेकिन उससे जो युवा पढ़कर निकल रहा है उसकी स्थिति के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि थोड़ा पढ़ा तो काम छोड़ा, ज्यादा पढ़ा तो गाँव छोड़ा और ज्यादा पढ़ा

तो हिन्दुस्तान छोड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि हाईस्कूल पढ़ाई का अर्थ खेती बाड़ी छोड़ना, ग्रेजुएशन का अर्थ गाँव छोड़ना है, जबकि डॉ विनोबा भावे ने 14 वर्षों तक घूम–घूम कर सम्पूर्ण भारत के युवाओं को संदेश दिया था कि थोड़ा पढ़ो तो काम से जुड़ो, ज्यादा पढ़ो तो गाँव से जुड़ो और ज्यादा पढ़ो तो हिन्दुस्तान से जुड़ो।

समाज की युवा–शक्ति को जाग्रत और चैतन्य बनाने की जिम्मेदारी निश्चय ही उच्च शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की है। आज भारत एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जहाँ हमारे सांस्कृतिक मूल्य बाजारीकरण की चपेट में आकर नष्ट हो रहे हैं। बाजारवाद ने हर वर्ग को प्रभावित किया है, लेकिन सबसे ज्यादा युवा–समुदाय को इसने संक्रमित किया है। जीवन की तीनों अवस्थाओं में युवावस्था वह अवस्था है जहाँ मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का संरक्षण, संवर्द्धन एवं परिष्करण होता है। इसके लिए महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों को सशक्त भूमिका निभानी होगी क्योंकि आज का युवा कल का नागरिक है। राष्ट्र के निर्माण में इसकी सशक्त भूमिका होती है। युवा वर्ग में शक्ति का अथाह सागर हिलोरें लेता है। जिस तरह से पहाड़ से वेग से गिरते हुए जल–प्रपात से बिजली पैदा करके जल के वेग को व्यवस्थित किया जाता है, उसी प्रकार विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों का यह दायित्व है कि वे अपने परिसर में उमड़ते हुए अजस्र ऊर्जा स्रोत को व्यवस्थित करके राष्ट्र के उत्थान एवं कल्याण हेतु इसका सकारात्मक उपयोग करें क्योंकि असंगठित युवा शक्ति बड़ी सरलता से विध्वंसात्मक कार्यवाही में लिप्त हो जाती है। आज की युवा शक्ति अनुशासनहीन, निराश और दिग्भ्रमित है। इसके लिए उच्च शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को उत्तरदायी समझते हैं। इस छोटे से बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा ये मूल्य संगठित रूप से प्रचारित होकर जनसाधारण का समर्थन प्राप्त करते हैं और व्यापक समाज में हलचल पैदा करते हैं। इसी बिन्दु पर जनसाधारण मूल्यों का संरक्षक बनता है लेकिन जब बौद्धिक समाज में जड़ता आ जाती है तो जनसाधारण मूल्यों के बारे में उदासीन हो जाता है। महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में शिक्षक व शिक्षार्थियों के रूप में एक संगठित बुद्धिजीवी समुदाय निवास करता है। शिक्षक युवा छात्रों में सामाजिक मूल्यों का संप्रेषण करता है, और ये युवा–शक्ति अपने अन्दर स्थापित मूल्यों को पूरे समाज में संप्रेषित करती है। इस तरह उच्च शिक्षा प्राप्त युवा–वर्ग व शिक्षक पूरे समाज के मूल्यों के संवाहक है। इस रूप में उनको एक सशक्त व गुरूतर दायित्व निभाना है क्योंकि उनका यह मूल्य संप्रेषण का कार्य आजीवन चलता रहता है किन्तु विडम्बना यह है कि अपने युग के ज्वलन्त और बुनियादी सवालों पर इन बुद्धिजीवियों का कोई स्पष्ट मत नहीं है। बुद्धिजीवी प्रोफेसरों और विशेषज्ञों की जड़ता और उदासीनता ने न केवल विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के परिसर को प्रभावित किया है अपितु इन ज्ञान–संस्थाओं ने सम्पूर्ण राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक ढाँचे को क्षतिग्रस्त कर दिया है। देश के जनसाधारण का दिग्दर्शन करने का दायित्व इन्हीं पर है किन्तु इनकी उदासीनता के कारण जनसाधारण का जो पारम्परिक ज्ञान व विवेक था, वह भी नष्ट हो गया और नवीन मूल्यों की पुर्नस्थापना भी नहीं हो पा रही है। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा मानव संसाधन मंत्रालय को कारगर कदम उठाना होगा। राजकिशोर ने एक लेख नैतिकता के छन्द में प्रश्न उठाया है। आज हम नैतिकता के संकट की बात करते हैं तो हमारा ठीक–ठाक आशय क्या होता है क्या यह संकट पूरी सभ्यता का ही संकट है या उसके सिर्फ एक पहलू का? भारत में इस संकट का स्वरूप क्या है इसका सम्बन्ध सिर्फ व्यक्ति से है या पूरी भारतीय व्यवस्था से? क्या नैतिकता की खोज के बिना हम सभ्य समाज की कल्पना कर सकते हैं? इन सभी ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने कहा एक बहुत बड़ा मिथक है कि हम परम्परागत समाज को नैतिक मानते हैं और उस समाज से तुलना करके हम यह कहते हैं कि हम आज एक घोर अनैतिक युग में रह रहे हैं। यह मिथक अतीत को स्पृहणीय और वर्तमान को अनुज्जवल बनाये रखता है। दुनिया में अभी तक कोई ऐसा दौर नहीं आया जब किसी खास जगह स्वर्ग उतर आया हो लेकिन इतना अवश्य है कि वर्तमान युग से पूर्व नैतिकता पर इतने प्रश्नचिन्ह नहीं लगे थे, हालाँकि यह भी अर्धसत्य है। वस्तुतः नैतिकता कभी स्थिर रही ही नहीं, उसका स्वरूप लगातार बदलता गया है। पुरानी नैतिकता को प्रश्नबद्ध कर नई नैतिकता का विकास एक अनवरत् प्रक्रिया है, लेकिन नैतिक सवाल का दंश सबसे ज्यादा हमारे सार्वजनिक जीवन में महसूस किया जाता है। यह एक विश्वसनीय समस्या है जो मूलभूत चुनौती के रूप में उभरी है। स्पष्ट है कि नैतिकता प्रश्न केवल भारत की नहीं सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। हम अतीत की तुलना में वर्तमान को अनैतिक मानते हैं, किन्तु

अतीत की नैतिकता को वर्तमान में लागू करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। भारतीय अतीत पर दृष्टिपात करें तो भौतिकवाद को निंदनीय माना जाता था, किन्तु आज इस वैज्ञानिक युग में जहाँ हम पदार्थ को ही सत्य मानते हैं, भौतिकवाद को नकार नहीं सकते और न ही प्राचीन नैतिक मूल्यों को वर्तमान युवा पीढ़ी पर आरोपित कर सकते हैं। यदि उन्हे जबरदस्ती सिखाया जाय कि भौतिक चकाचौंध, बाजारवाद मिथ्या है तो वे इस प्राचीन नैतिक मूल्यों को पचा नहीं पायेंगे। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप नैतिकता की नवीन परिभाषा की खोज करें, ऐसे मूल्यों की स्थापना करें जिन्हें युवा पीढ़ी आसानी से स्वीकार कर ले। इस मानसिक शून्य को भरने की जिम्मेदारी बुद्धिजीवी वर्ग की है। उच्च शिक्षा के माध्यम से इस उद्देश्य की पूर्ति की जानी चाहिए। यद्यपि उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में अधिकांशतः विश्वविद्यालय में राष्ट्र गौरव, पर्यावरणीय अध्ययन, मानव मूल्य जैसे विषय अनिवार्य कर दिये गये हैं। इन विषयों में उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी को डिग्री प्राप्त होगी अन्यथा नहीं। किन्तु मात्र इतने से ही नैतिक मूल्यों की स्थापना नहीं हो सकती। बुद्धिजीवी समुदाय समाज का नियंत्रक है अतः उनका यह दायित्व है कि वे प्राचीन व आधुनिक रूढ़ियों, परम्पराओं, अन्धविश्वासों एवं कट्टरताओं के विरुद्ध संघर्ष करके नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करें और समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करें। जो परम्पराएँ, व्यवस्थाएँ और मान्यताएँ मनुष्य की समझ और संवेदनशीलता का विकास करती है, उसे जड़ और रूढ़िबद्ध होने से रोकती है, उसे दूसरे मनुष्यों को अपने ही जैसा समझने की दृष्टि देती है, मनुष्य को उसकी स्वार्थ केन्द्रित क्षुद्रताओं से निकालकर उसे वृहत् मानवीय सरोकारों का हिस्सा बनाती है, वे परम्पराएँ, व्यवस्थाएँ व मान्यताएँ नैतिक हैं। नैतिकता उस प्रवाहमान की तरह है जो गढ्ढों में सड़ते पानी को अपने वेग से बहा ले जाती है, और उसमें नया पानी भर देती है। ऐसे नैतिक मूल्यों के पुर्नस्थापना का दायित्व उच्च शिक्षा संस्थानों पर है। गाँधी जी कहा करते थे कि ज्ञान की भूमिका चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण है। ज्ञान साधन है चरित्र साध्य। वह ज्ञान निरर्थक है, जिससे मानव का कष्ट बढ़ता है। वह ज्ञान जो केवल मस्तिष्क में रह जाता है हृदय में प्रवेश नहीं कर पाता, वह जीवन के अनुभव में प्रायः व्यर्थ सिद्ध होता है।

स्पष्ट है कि ज्ञान की सार्थकता तभी है जब उसका हमारे आचरण में प्रतिफलन हो। समाज के नैतिक अवमूल्यन के लिए निःसंदेह बुद्धिजीवी वर्ग उत्तरदायी है जिसमें शिक्षक व शिक्षार्थी मुख्य रूप से है। महाविद्यालय परिसर राजनीति के अखाड़े बन गये हैं। यूनियन का चुनाव, चुनाव के दौरान हिंसा, शिक्षकों से अभद्र व्यवहार आम बात है। आये दिन अखबारों में खबरें आती हैं कि अमुक महाविद्यालय के प्राचार्य, प्राध्यापक या विश्वविद्यालय के कुलपति के साथ छात्र–नेताओं द्वारा अभद्र व्यवहार किया गया। ये छात्र–नेता युवा–शक्ति का नेतृत्व करते हैं। जब नेतृत्व ही पथ–भ्रष्ट है तो अनुयायी का क्या दोष वे तो नेता का ही अनुसरण करेंगे। समाज में शिक्षक को वह प्रतिष्ठा व सम्मान नहीं प्राप्त है जो उसे मिलना चाहिए। कारण यह है कि वह केवल वेतनभोगी है। उसके पास ऊपरी कमाई नहीं है। आज के इस भौतिकवादी संस्कृति में जहाँ ऊपरी कमाई सामाजिक प्रतिष्ठा बनाती है, वेतनभोगी दीनहीन शिक्षक के उपदेशों को कौन सुनेगा। वे छात्र–नेता जो महाविद्यालय परिसर में गुरुजनों से अभद्र व्यवहार करते हैं, महाविद्यालय परिसर का वातावरण दूषित करते हैं, क्या उनके इस व्यवहार के लिए उनके माता–पिता उत्तरदायी नहीं हैं परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है। संस्कारों का पाठ वहीं पढ़ाया जाता है। जब बीज ही विषैला हो तो उसमें मीठे फल की आशा कैसे करें। कुल मिलाकर अच्छा वेतनमान देने मात्र से शिक्षक की सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं लौटेगी। इसके लिए समाज को शिक्षकों के प्रति अपनी सोच बदलनी होगी। उन्हें यह सोचना होगा कि आज वे जिस पोस्ट पर हैं उसके पीछे किसी शिक्षक का ही हाथ है। यदि वे यह सोचें तो शायद उनका मस्तिष्क स्वयं श्रद्धा से झुक जायेगा और तब वे अपने बच्चों को भी तथाकथित मास्टर (प्रोफेसर) की इज्जत करना सिखा पायेंगे।

निष्कर्ष

निश्चय ही समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और उच्च शिक्षा इस क्षेत्र में कारगर हो सकती है, किन्तु इसके लिए मीडिया, प्रशासन, पुलिस तथा अन्य गैर–सरकारी संगठनों को भी आगे आना होगा। शिक्षकों के साथ अपमानजनक व्यवहार करने वाले असामाजिक तत्वों को कठोर दण्ड देने का प्रावधान होना चाहिए। उन्हे कम से कम 10 वर्ष का कारावास दिया जाना चाहिए, तभी वह शिक्षक सच्चे अर्थों में समाज का दिशा–निर्देश कर सकेगा।

प्राचार्य या कुलपति के पास अधिक से अधिक यही अधिकार है कि वह ऐसे छात्र को विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दें, किन्तु राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण वह यह भी नहीं कर पाता। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। जब तक शिक्षक समुदाय को सरकारी व गैर–सरकारी संगठनों का सहयोग नहीं प्राप्त होगा वे अपने उद्देश्य में कामयाब नहीं हो सकते। कमल नयन काबरा ने लिखा है ''हर व्यक्ति, व्यापारी और कार्यकर्त्ता को अपने और आने वाली संतति के बारे में अपने सरोकारों को कुछ अमली जामा पहनाना पड़ेगा। पूरी व्यवस्था जर्जर, दिग्भ्रमित, मलिन और क्षुद्र स्वार्थपोषी हो गयी है।'' ये सब कृत्य भ्रष्टाचार, अपराध सम्पत्ति और सुविधाओं की आपाधापी द्वारा लोकशाही का उपहास बना रहे हैं। अतः लोकतंत्र को वास्तविक बनाने के लिए सबको एकजुट प्रयास करने की आवश्यकता है जिसमें उच्च शिक्षा सबका नेतृत्व करे। गाँधी जी का कथन था ''किसी भी समाज की प्रगति उसकी सम्पत्ति से नहीं आँकी जाती उसके नैतिक चरित्र से आँकी जाती है।'' आज उच्च शिक्षा से ऐसे ही समाज के निर्माण की उम्मीद की जा रही है।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, आदित्य नारायण (2015) *मानव मूल्यों का पुनर्जागरण और शिक्षा का स्वरूप,* माधुरी प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 235।
2. पटनायक, किशन (2005) *भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि,* राजकमल प्रकाशन, जनवरी 2005, पटना, पृ. 204, 205।
3. राजकिशोर (सम्पादक) (2009) *नैतिकता पर नये सवाल,* वाणी प्रकाशन जनवरी 2009, नई दिल्ली, पृ. 40, 70, 71।
4. काबरा, कमल नयन (2008) *भूमण्डलीय के भँवर में भारत,* शुभदा प्रकाशन, जनवरी 2008, नया बाराद्वार छत्तीसगढ़पृ. 277।
5. जोशी, एम. सी. (2015) *गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अम्बेडकर,* अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 30।

——==00==——